ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-3* Issue-2*March- 2018
Innovation The Research Concept

कृषक जीवन की त्रासदी को उकेरती फिल्म 'दो बीघा जमीन'

सारांश

दो बीघा जमीन फिल्म की कहानी बंगाल के छोटे से गांव में स्थित एक साधारण किसान (शंभू) परिवार की है। एक खेत के छोटे टुकड़े पर यह परिवार अपना जीवन व्यतीत कर रहा होता है, कि दो साल की अकाल की भयावह स्थिति इन्हें भीतर से जर्जर कर जमींदार के चंगुल में फंसने को वाध्य कर देती है। जमींदारी प्रथा के खात्मे के डर से जमींदार गांव में अपनी मिल खोलना चाहता है।

शंभू के खेत का टुकड़ा ही मिल बनाने के स्थान पर एक मात्र रूकावट है। जमींदार के तमाम लुभावने वादे एवं भय के बाद भी जब शंभू खेत को देना मंजूर नहीं करता तो कानूनी प्रक्रिया के द्वारा उसे तीन महीने के भीतर ऋण चुकाने का आदेश मिलता हैं। गर्भवती पत्नी के गांव में मजदूरी करने से लेकर शंभू एवं उसके छोटे लड़के के कलकत्ता महानगर में अथक श्रम के बावजूद भी शंभू का परिवार जब ऋण नहीं चुका पाता तो उसके घर की नीलामी हो जाती है। यह नीलामी सिर्फ शंभू जैसे किसान के खेत की नीलामी नहीं वरन् आजाद भारत के किसानों के अपने परिवेश से जुदा होने की नीलामी थी।

प्रमोद कुमार निरंजन
प्रवक्ता,
हिन्दी विभाग,
डी0 ए0 वी0 इण्टर कालेज,
महोबा

मुख्य शब्द : दो बीघा जमीन, कृषक जीवन।

प्रस्तावना

सन् 1953 में विमलराय द्वारा निर्देशित फिल्म 'दो बीघा जमीन' कृषक जीवन का दर्दनाक दास्ता है। आजादी बाद के सपने कि, सब कुछ ठीक हो जायेगा पर आजादी मिलने के बाद भी कुछ नहीं बदला। किसान मजदूरों का शोषण करने वाले जमींदारों के न तो शोषण के तरीके बदले थे और न ही क्रूरता के। तिकड़मों से जमीन हड़प लेना उनका शगल बन गया था।

विमल राय ने किसान जीवन को पर्दे में इस खूबी से उतारा कि मामूली से अभिनेता/अभिनेत्री भी स्टार बन गये। कृषक जीवन के यथार्थ का चित्रण इस फिल्म में बखूबी देखने को मिलता है– ''दो बीघा जमीन ने हिन्दी सिनेमा को एक नई दिशा दी। यथार्थ जीवन को संवेदनशीलता के साथ चित्रित कर सिनेमा को एक नया मानवीय स्वरूप किस प्रकार दिया जा सकता है, इसका उदाहरण बनी दो बीघा जमीन।''[1]

शोधकाल

दिसम्बर, 2017–फरवरी 2018

उद्देश्य

इस फिल्म का उद्देश्य भारतीय किसानों की त्रासद स्थितियों की ओर संकेत करती हैं। किसानों की इस दयनीय स्थिति के लिये जमींदार एवं धर्म सत्ता की निर्णायक भूमिका रही है। आजादी के बाद किसानों का जीवन तब भी विडम्बनापूर्ण हो जाता है जब जमींदारी प्रथा के खात्में के डर से जमींदार अपने अस्तित्व को बचाये रखने के लिये औद्योगिक प्रतिष्ठानों का सहारा लेते हैं। आजाद भारत का किसान आज लगातार अपनी ही जमीन से विस्थापित होकर शहरी मजदूर बनने को अभिशप्त है। शंभू के परिवार का अपने जड़ से विस्थापित होने का दर्द आजाद भारत में किसान की दुखद स्थिति की ओर संकेत करती है।

सायित्यावलोकन

शंभू महतों (बलराज साहनी) दो बीघा जमीन का मालिक है। उसकी गृहस्थी का सारा दारोमदार इसी दो बीघा जमीन पर टिका है। इसी उपज से अपने घर का सारा खर्च चलाता है लेकिन पिछले कुछ समय से पड़े सूखे की मार से वह कर्जदार हो जाता है। परिवार में पत्नी पार्वती (निरूपा राय) बेटा

कन्हैया तथा अशक्त पिता गंगू सबके दाना पानी का दारोमदार शंभू महतो के कंधों पर है। आजाद भारत में नव निर्माण के लिये शुरू हुई औद्योगिक क्रान्ति छोटे किसानों को बेदखल करने लगी। जमींदार अपनी जमीन पर उद्योग लगाना चाहता है। इसलिये वह किसानों की जमीन हड़पना चाहता है। जमींदार अपनी तिकड़मों से शंभू का खेत भी हड़पना चाहता है क्योंकि वह उसका कर्जदार है। किसान के लिये खेत जमीन का टुकडा मात्र नहीं है बल्कि उसके लिये वह मॉ है। अपनी मॉ को बचाने के लिये उसे गॉव छोडना पड़ता है। उसके पलायन का दर्द इस शब्दों में फूटता है– ''रोटी गले नहीं उतरती है। कुछ करना होगा।''[2]

शंभू कलकत्ता की सड़कों पर नंगे पॉव–हाथ रिक्शा चलाने का काम शुरू कर देता है। वह मेहनत से पाई–पाई जोड़ता है। उसी समय उसके पिता की मृत्यु हो जाती है। पत्नी और वह स्वयं अलग अलग दुर्घटना का शिकार हो जाते है। प्रहलाद अग्रवाल के शब्दों में– ''वह जिन्दगी की लड़ाई पूरी शिद्दत के साथ लड़ता है और हर बार पराजित होता है।''[3]

शंभू महतो अपनी जमीन को बचाने के लिये अपने समूचे अस्तित्व को ही दॉव पर लगा देता है। यह संघर्ष अकेले शंभू महतो का नहीं है, यह उस किसान का संघर्ष है जो विकास की आड़ में अपनी जमीन से बेदखल किया जा रहा है। यह बेदखली उसे मजदूर बना रही है और उसकी जमीन उसके ही शोषण के हथियार के रूप में इस्तेमाल की जा रही है। शंभू की जमीन अपनी नहीं रह जाती है। उसकी जमीन पर कारखाना बनने लगा है। संजीव श्रीवास्तव लिखते हैं– ''अपनी ही जमीन पर बनते कारखाने को वे तीनों किसी अजनबी की तरह बस ताकते रह जाते हैं और आगे बढ़ जाते हैं। अपनी माटी अब सपना हो जाती है। पूंजी पोषित सामाजिक व्यवस्था जीत जाती है।''[4]

किसान जीवन हमेशा अभावग्रस्त रहा है। लेकिन अपनी मिट्टी का एहसास उसे सुकून से भर देता है। भयानक अभावों में भी वह अपनी खुशियॉ ढूंढ़ लेता है। लंबे अरसे बाद जब आसमान में काले बादल उमड़ते हैं और मूसलाधार वर्षा होती है तो समूचा गॉव गदगद होकर झूमने लगता है। और सभी मिलकर भीगते हुये गीता गा उठते है– ''हरियाला सावन ढोल बजाता आया, धिन तक तक मोर नचाता आया।''[5]

गॉव का मस्त मौलापन शहरी जाल में उलझकर रह जाता है। शहर केवल विकास की चकाचौंध से ही नहीं जाना जाता है बल्कि झूंठ, मक्कारों, बेईमानी, चोरी और एक–दूसरे की पीठ पर छुरा घोंपकर आगे निकल जाने की होड़ की वजह से भी जाना जाता है। गॉव का सीधा–सादा शंभू अपने संस्कारों से डिगता नहीं है किन्तु जमींदार का कर्ज चुकाने के लिये उसका बेटा चोरी करता है तो वह कहता है– ''किसान का बेटा होकर तूने चोरी की, बचवा तेरी मॉ सुनेगी तो तड़पकर जान दे देगी।''[6]

औद्योगिक सभ्यता किसान को पशु की तरह जीवन जीने को विवश करती है। किसान की सबसे बडी त्रासदी तो यह है कि उसका भरपूर सामाजिक शोषण होता है, न्याय भी उसे नहीं मिल पाता है। धन के आगे उस मेहनतकश की आवाज नक्कारखाने में तूती की आवाज की तरह दब जाती है। ठाकुर के द्वारा उसकी जमीन हथिया लेने पर उसके पास कुछ नहीं बचता है– ''अंत में शंभू और उसके परिवार के पास कुछ नहीं है सिवा अनंत में निहारती हुई आंखों में चमकते हौंसले के। वह जिजीविषा जो कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी हार मानने के लिये तैयार नहीं।''[7]

किसान की यही खासियत है कि वह हमेशा आशावाद पर टिका रहता है। शंभू भी चाहता है कि उसकी पत्नी अच्छे कपड़े गहने पहने लेकिन यथार्थ उससे कोसों दूर है। वह अपनी पत्नी को विश्वास दिलाता है– ''अबकी फसल अच्छी हुई तो नत्थूराम सुनार से तेरी पायल लौटा लूॅगा। पहनकर चलेगी तो दूर से रूनझुन की आवाज सुनाई देगी।''[8]

इससे ज्यादा क्रूर व्यंग्य कोई हो नहीं सकता है। किसान जन्म से ही त्रासदी लेकर पैदा होता है। और उसी त्रासदी में वह मर भी जाता है। जीवन भर मरता–खपता है पर उसे कुछ भी हासिल नहीं होता है। स्वतन्त्रता मिलने के बाद भी क्या किसान की स्वायत्ता मिली है। इसका उत्तर नहीं में ही होगा। प्रहलाद अग्रवाल जी लिखते हैं– ''वह आर्थिक रूप से ही नहीं मानसिक रूप से भी परावलम्बी हो रहा है। उसका श्रम पवित्रता की सुगंध से कटकर बाजार में मोल–तोल की वस्तु बन गया है।''[9]

औद्योगिक जगत में अथक परिश्रम के बावजूद मजदूर किसान बमुश्किल जिन्दा रहने के लिये रूखी–सूखी का इन्तजाम भले ही कर ले, किन्तु वह एक इज्जतदार, सामान्य, सम्पन्न जीवन गुजारने की राह नहीं निकाल सकता है। विमलराय जी ने भारतीय किसान जीवन की उसकी सम्पूर्ण त्रासदी के साथ रूपहले पर्दे पर उतार दिया है। उस समय के साधारण अभिनेताओं ने भी पात्रों में जान फूॅक दी है। 'दो बीघा जमीन' सिनेमाई कौशल की अद्भुत मिशाल है। देश में ही नहीं विदेशों में भी इसकी प्रशंसा हुई है– ''देश विदेश के बुद्धिजीवियों ने इसकी प्रशंसा के पुल बॉधे है। विदेशी अखबारों में इसे शहरी सडक पर गॉव के आंसू की तरह व्याख्यायित किया, पश्चिम के फिल्मकारों ने भी इस बात को स्वीकार किया कि भारत में भी अब कैमरा बोलने लगा है।''[10]

यह फिल्म किसान का जमीन से जुडे होने के गहरे मर्म को उद्घाटित करती है। उसके सम्पूर्ण संघर्ष, हताशा एवं हार को बडी शिद्दत के साथ उकेरने में सफल रही है। कृषक जीवन की विडम्बनाओं का गहरा आक्रोश 'दो बीघा जमीन' में उभरकर दर्शकों के सामने आया है।

निष्कर्ष

दो बीघा जमीन फिल्म की विषयवस्तु उडिया उपन्यासकार 'फकीर मोहन सेनापति' कृत ''छेः बीघा जमीन'' (उपन्यास) एवं 'मुंशी प्रेमचन्द' के उपन्यास 'गोदान' जैसी ही है। साधारण किसानों की कमर तोड़ मेहनत के बावजूद उपेक्षित पराजित एवं निराश जीवन जीने की नियति का साक्षात्कार कराता है। शहर में गरीब तबका के लोग मामूली धन की चाहत में जानवर से भी वदतर जीवन जीने को अभिषप्त हैं। शंभू अपने 'हाथ

रिक्शा' को दूसरे हाथ रिक्शा से 'जानवर की तरह रेस' करता हुआ नजर आता है। 'विमल राय' ने 'दो बीघा जमीन' फिल्म के अपने शानदार हुनर से न सिर्फ भारतीय सिनेमा को एक ऐतिहासिक फिल्म दी, बल्कि सिने जगत को सृजन कर एक नया रास्ता भी दिखाया।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *हिन्दी सिनेमा आदि से अनंत भाग 1 – संपादक – प्रहलाद अग्रवाल, प्रकाशक – साहित्य भंडार इलाहाबाद पृ0 सं0 163*
2. *सिनेमा और साहित्य : अन्तः सम्बन्ध – संपादक – प्रो0 रतनकुमार पाण्डेय, प्रकाशक – अनंग प्रकाशन दिल्ली, पृ0सं0 252*
3. *हिन्दी सिनेमा आदि से अनंत भाग 1 – संपादक – प्रहलाद अग्रवाल, प्रकाशक – साहित्य भंडार इलाहाबाद पृ0 सं0 164*
4. *इन्द्रप्रस्थ भारती (मासिक पत्रिका) मार्च 2018 – प्रधान संपादक – मैत्रेयी पुष्पा, प्रकाशक – हिन्दी अकादमी दिल्ली पृ0 सं0 62*
5. *सिनेमा और साहित्य : अन्तः सम्बन्ध – संपादक – प्रो0 रतनकुमार पाण्डेय, प्रकाशक – अनंग प्रकाशन दिल्ली, पृ0 सं0 251*
6. *हिन्दी सिनेमा आदि से अनंत भाग 1 – संपादक – प्रहलाद अग्रवाल, प्रकाशक–साहित्य भंडार इलाहाबाद पृ0सं0 168*
7. *हिन्दी सिनेमा आदि से अनंत भाग 1 – संपादक – प्रहलाद अग्रवाल,प्रकाशक –साहित्य भंडार इलाहाबाद, पृ0सं0 163*
8. *सिनेमा और साहित्य : अन्तः सम्बन्ध – संपादक – प्रो0 रतनकुमार पाण्डेय, प्रकाशक – अनंग प्रकाशन दिल्ली पृ0 सं0 251*
9. *हिन्दी सिनेमा आदि से अनंत भाग 1 – संपादक – प्रहलाद अग्रवाल, प्रकाशक – साहित्य भंडार इलाहाबाद पृ0 सं0 163*
10. *हिन्दी सिनेमा आदि से अनंत भाग 1 – संपादक – प्रहलाद अग्रवाल, प्रकाशक – साहित्य भंडार इलाहाबाद, पृ0सं0 159*